Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 4, July-August 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i04.1468

क्षेत्रीय दलों के माध्यम से वंचित व पिछड़े वर्गों की राष्ट्रीय राजनीति में भागीदारी का अध्ययन

डॉ. अशोक कुमार मीना

सहायक आचार्य
राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविधालय मासलपुर,करौली (राज.)

शोध-सार (Abstract)

भारतीय लोकतंत्र की सबसे उल्लेखनीय विशेषताओं में से एक 'नीचे से लोकतंत्र का सुदृढ़ीकरण' और सामाजिक समूहों का राजनीतिक सशक्तीकरण रहा है। स्वतंत्रता के बाद के शुरुआती दशकों में भारतीय राजनीति में 'एक-दल प्रभुत्व प्रणाली' (कांग्रेस प्रणाली) का बोलबाला था, जिसमें समाज के उच्च वर्गों का वर्चस्व था। हालांकि, 1980 और 1990 के दशकों में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के अभ्युदय ने भारतीय लोकतांत्रिक परिदृश्य को मौलिक रूप से बदल दिया। इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य यह विश्लेषित करना है कि किस प्रकार क्षेत्रीय दलों ने अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों (OBC) और अन्य हाशिए पर स्थित समुदायों को राष्ट्रीय राजनीति की मुख्यधारा में लाने का कार्य किया है।

यह अध्ययन मंडल आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन, बहुजन समाज पार्टी (BSP), समाजवाद पार्टी (SP), राष्ट्रीय जनता दल (RJD), द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (DMK), और झारखंड मुक्ति मोर्चा (JMM) जैसे प्रमुख क्षेत्रीय दलों के केस अध्ययनों के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया का मूल्यांकन करता है। निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि क्षेत्रीय दलों ने न केवल नीति-निर्माण में वंचित वर्गों के हितों को प्राथमिकता दिलाई है, बल्कि भारत की गठबंधन राजनीति (Coalition Politics) के माध्यम से केंद्र सरकार के गठन और उसकी प्राथमिकताओं को तय करने में निर्णायक भूमिका निभाई है। यद्यपि, परिवारवाद, आंतरिक विभाजन और पहचान की संकीर्ण राजनीति जैसी चुनौतियां अभी भी बनी हुई हैं, फिर भी क्षेत्रीय दलों ने भारतीय लोकतंत्र को अधिक समावेशी, प्रतिनिधिक और सहभागी बनाने में अद्वितीय योगदान दिया है।

मुख्य शब्द: क्षेत्रीय दल, वंचित वर्ग, अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC), बहुजन, राष्ट्रीय राजनीति, गठबंधन सरकार, सामाजिक न्याय, प्रतिनिधि लोकतंत्र।

1. प्रस्तावना (Introduction)

विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत में राजनीतिक सहभागिता केवल मतदान तक सीमित न रहकर सामाजिक सशक्तीकरण का एक सशक्त माध्यम रही है। भारत जैसे विविधतापूर्ण और जाति-आधारित समाज में सत्ता का समतामूलक वितरण सदैव एक प्रमुख चुनौती रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात प्रथम तीन दशकों (1947 से 1977) तक भारतीय राजनीति में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का एकाधिकार रहा, जिसे रजनी कोठारी ने 'कांग्रेस प्रणाली'

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 4, July-August 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i04.1468

(Congress System) की संज्ञा दी थी। इस अवधि में राजनीतिक नेतृत्व मुख्य रूप से समाज के पारंपरिक अभिजात वर्ग (उच्च जातियों) के हाथों में केंद्रित था, जबकि वंचित, दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्ग केवल वोट बैंक के रूप में प्रयुक्त होते थे।

1980 के दशक के उत्तरार्ध और 1990 के दशक की शुरुआत में भारतीय राजनीति में 'द्वितीय लोकतांत्रिक उभार' (Second Democratic Upsurge) देखा गया। योगेंद्र यादव के अनुसार, इस कालखंड में उन वर्गों की राजनीति में प्रत्यक्ष भागीदारी बढ़ी जो अब तक हाशिए पर थे। इस परिवर्तन का सबसे बड़ा वाहक बने—**क्षेत्रीय राजनीतिक दल**।

उत्तर भारत में मंडल राजनीति और दक्षिण भारत में गैर-ब्राह्मण आंदोलनों के परिणामस्वरूप ऐसे राजनीतिक दलों का जन्म हुआ जिन्होंने सीधे तौर पर 'सामाजिक न्याय' और 'समान आनुपातिक प्रतिनिधित्व' का नारा बुलंद किया। क्षेत्रीय दलों ने वंचित और पिछड़े वर्गों के भीतर राजनीतिक चेतना का संचार किया और उन्हें यह अहसास कराया कि राज्य सत्ता पर नियंत्रण प्राप्त किए बिना सामाजिक और आर्थिक असमानता को समाप्त नहीं किया जा सकता।

प्रस्तुत शोध पत्र इस बात का गहन अध्ययन करता है कि किस प्रकार क्षेत्रीय दलों ने वंचित और पिछड़े वर्गों को प्रादेशिक स्तर से उठाकर राष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में स्थापित किया। यह पत्र इस प्रक्रिया के ऐतिहासिक, सैद्धांतिक और व्यावहारिक पहलुओं का परीक्षण करते हुए इसके प्रभाव, उपलब्धियों और सीमाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

2. सैद्धांतिक एवं अवधारणात्मक ढांचा (Theoretical Framework)

क्षेत्रीय दलों और वंचित वर्गों के संबंधों को समझने के लिए विभिन्न समाजशास्त्रीय एवं राजनीतिक सिद्धांतों का सहारा लिया गया है:

2.1 प्रतिनिधि लोकतंत्र और सामाजिक समावेश का सिद्धांत

हन्ना पिटकिन (Hannah Pitkin) के प्रतिनिधित्व के सिद्धांत के अनुसार, लोकतंत्र में केवल 'अभिनय प्रतिनिधित्व' (Substantive Representation) पर्याप्त नहीं है, बल्कि 'प्रतीकात्मक एवं आनुपातिक प्रतिनिधित्व' (Descriptive Representation) भी उतना ही महत्वपूर्ण है। जब किसी पीड़ित या वंचित समूह के प्रतिनिधि स्वयं सत्ता के पदों पर बैठते हैं, तो इससे उस पूरे समुदाय में आत्मसम्मान और नागरिकता की भावना सुदृढ़ होती है।

2.2 भारत में 'द्वितीय लोकतांत्रिक उभार' (Second Democratic Upsurge)

राजनीतिशास्त्री योगेंद्र यादव ने 1990 के दशक में भारतीय राजनीति में आए बदलाव को 'द्वितीय लोकतांत्रिक उभार' कहा है। प्रथम उभार 1950 और 1960 के दशकों में वयस्क मताधिकार के साथ आया था, जो कि ऊपर से थोपा गया था। इसके विपरीत, द्वितीय उभार नीचे से उत्पन्न हुआ, जिसमें ग्रामीण, पिछड़े, दलित और कम पढ़े-लिखे नागरिकों ने चुनावों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और अपनी स्थानीय व जातीय पहचान के आधार पर नए क्षेत्रीय दलों का गठन किया।

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 4, July-August 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i04.1468

2.3 मूक क्रांति का सिद्धांत (Silent Revolution)

फ्रांसिस क्रिस्टोफ जाफ्रेलोट (Christophe Jaffrelot) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में इसे 'भारत की मूक क्रांति' (India's Silent Revolution) कहा है। उनके अनुसार, उत्तर भारत में उच्च जातियों से पिछड़े और निम्न वर्गों के हाथों में सत्ता का हस्तांतरण बिना किसी हिंसक क्रांति के, केवल लोकतांत्रिक और चुनावी प्रक्रियाओं के माध्यम से संपन्न हुआ। क्षेत्रीय दलों ने इस मूक क्रांति के माध्यम के रूप में कार्य किया।

2.4 क्लीवेज थ्योरी (Cleavage Theory)

लिपसेट और रोक्कन (Lipset & Rokkan) का दरार सिद्धांत यह व्याख्या करता है कि समाजों में मौजूद सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक विभाजन (जैसे जाति, क्षेत्र, भाषा) किस प्रकार राजनीतिक दलों के आधार बनते हैं। भारत में जाति और क्षेत्रीय विषमता ऐसी दो मुख्य दरारें (Cleavages) बनीं, जिनका दोहन क्षेत्रीय दलों ने वंचितों को एकजुट करने के लिए किया।

3. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: कांग्रेस प्रणाली से बहुदलीय व्यवस्था तक

भारतीय राजनीति के विकास क्रम को तीन प्रमुख चरणों में विभाजित करके देखा जा सकता है:

3.1 प्रथम चरण (1947–1967): एक-दल प्रभुत्व और 'वंचितों का संरक्षण'

इस दौर में कांग्रेस एक 'छतरी संगठन' (Umbrella Party) के रूप में कार्य करती थी। इसमें समाज के सभी वर्ग शामिल थे, लेकिन निर्णय निर्माण की प्रक्रिया उच्च जातियों और शहरी अभिजात वर्ग के हाथों में थी। वंचित और पिछड़े वर्गों को केवल 'संरक्षण' (Patronage) दिया जाता था, नेतृत्व की भूमिका नहीं।

3.2 द्वितीय चरण (1967–1989): प्रादेशिक चेतना और गैर-कांग्रेसवाद

1967 के चौथे आम चुनावों में 8 राज्यों में गैर-कांग्रेस सरकारें बनीं। राममनोहर लोहिया द्वारा प्रतिपादित 'गैर-कांग्रेसवाद' और पिछड़े वर्गों को 60% आरक्षण देने के विचार ने उत्तर भारत में चरण सिंह के नेतृत्व में किसान और मध्यवर्ती जातियों के राजनीतिक उभार की नींव रखी। दक्षिण भारत में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (DMK) ने 1967 में तमिलनाडु में सरकार बनाकर क्षेत्रीय अस्मिता और सामाजिक न्याय की नई मिसाल कायम की।

3.3 तृतीय चरण (1989 से वर्तमान): मंडल, बहुजन और गठबंधन काल

1989 में जनता दल सरकार द्वारा मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने (27% OBC आरक्षण) की घोषणा के बाद भारतीय राजनीति में भूचाल आ गया। इसके साथ ही कांशीराम द्वारा स्थापित बहुजन समाज पार्टी (1984) और मुलायम सिंह यादव द्वारा स्थापित समाजवादी पार्टी (1992) जैसे दलों ने दलितों और पिछड़ों के गठजोड़ को राजनीतिक शक्ति में बदल दिया। इस दौर के बाद से केंद्र में कोई भी सरकार क्षेत्रीय दलों के समर्थन के बिना बनना लगभग असंभव हो गया।

4. प्रमुख क्षेत्रीय दल एवं वंचित वर्गों का राजनीतिक सशक्तीकरण

वंचित और पिछड़े वर्गों को राष्ट्रीय पटल पर स्थापित करने में देश के विभिन्न भागों के क्षेत्रीय दलों की भूमिका का विस्तृत विश्लेषण नीचे दिया गया है:

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 4, July-August 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i04.1468

[कांग्रेस का एक-दल प्रभुत्व (1947-1967)]
|
▼
[गैर-कांग्रेसवाद एवं क्षेत्रीय उभार (1967-1989)]
|
▼
[मंडल आयोग & दलित चेतना (1989-1990 दशक)]
|
▼
[क्षेत्रीय दलों द्वारा राष्ट्रीय राजनीति पर प्रभाव (गठबंधन युग)]

4.1 बहुजन समाज पार्टी (BSP) और दलित राजनीति

कांशीराम द्वारा गठित और मायावती द्वारा नीत बसपा ने उत्तर भारत में दलित चेतना को एक नई दिशा दी।

- **नारा एवं विचारधारा:** "वोट हमारा, राज तुम्हारा—नहीं चलेगा, नहीं चलेगा" जैसे नारों ने दलितों में सत्ता प्राप्ति की तीव्र इच्छा जगाई।
- **राष्ट्रीय प्रभाव:** उत्तर प्रदेश में 4 बार सरकार बनाने के साथ-साथ बसपा ने राष्ट्रीय राजनीति में दलित मुद्दों को प्राथमिक एजेंडे पर ला दिया। मायावती का मुख्यमंत्री बनना केवल एक प्रशासनिक घटना नहीं थी, बल्कि यह भारत के सबसे शोषित वर्ग के राजनीतिक पुनरुत्थान का प्रतीक था।

4.2 समाजवादी पार्टी (SP) एवं राष्ट्रीय जनता दल (RJD) – OBC उभार

उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी और बिहार में राष्ट्रीय जनता दल ने मंडल आयोग के बाद अन्य पिछड़े वर्गों (OBC) विशेषकर यादव, कुर्मी और अन्य कृषक जातियों को एकजुट किया।

- **सामाजिक न्याय का एजेंडा:** इन दलों ने शासन व्यवस्था, पुलिस बल, और नौकरशाही में पिछड़ों के आनुपातिक प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित किया।
- **राष्ट्रीय गठबंधन में भूमिका:** 1996 से 1998 के संयुक्त मोर्चा (United Front) काल में देवेगौड़ा और आई.के. गुजराल सरकारों के गठन में इन दलों की केंद्रीय भूमिका रही। मुलायम सिंह यादव का देश का रक्षा मंत्री बनना यह दर्शाता है कि क्षेत्रीय दलों ने पिछड़ों को राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे संवेदनशील मंत्रालयों तक पहुँचाया।

4.3 दक्षिण भारत का मॉडल: DMK और AIADMK

तमिलनाडु में पेरियार के आत्मसम्मान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि पर बने इन दलों ने सामाजिक न्याय की दिशा में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की।

- **69% आरक्षण मॉडल:** तमिलनाडु ने तमिलनाडु पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम 1993 के तहत 69% आरक्षण लागू किया और इसे संविधान की 9वीं अनुसूची में शामिल करवाया।
- **राष्ट्रीय प्रभाव:** DMK और AIADMK ने 1989 से 2014 तक केंद्र की प्रत्येक सरकार (चाहे NDA हो या UPA) में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और राष्ट्रीय स्तर पर पिछड़े वर्गों के कल्याणकारी बजटीय आवंटन को प्रभावित किया।

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 4, July-August 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i04.1468

4.4 आदिवासी सशक्तीकरण: झारखंड मुक्ति मोर्चा (JMM)

आदिवासी आबादी के अधिकारों और जल-जंगल-जमीन की रक्षा के लिए शिबू सोरेन के नेतृत्व में गठित जेएमएम ने अंततः 2000 में झारखंड राज्य का निर्माण करवाया।

- **राष्ट्रीय पहचान:** जेएमएम ने संसद में आदिवासियों की विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान, अनुसूची 5 व 6 के क्रियान्वयन और प्राकृतिक संसाधनों पर स्थानीय समुदायों के अधिकारों के मुद्दों को प्रखरता से उठाया।

5. क्षेत्रीय दलों द्वारा राष्ट्रीय राजनीति पर पड़ा प्रभाव

क्षेत्रीय दलों ने न केवल अपने-अपने राज्यों में शासन किया, बल्कि राष्ट्रीय स्तर की राजनीति की दिशा और दशा को भी गहराई से प्रभावित किया। इनके प्रमुख प्रभाव निम्नलिखित हैं:

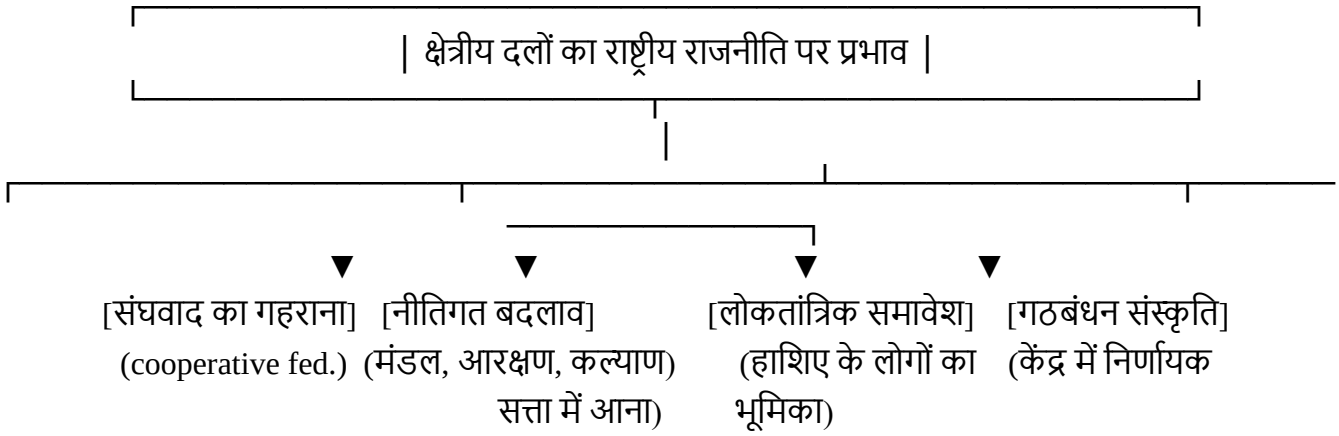

5.1 संघीय व्यवस्था का सच्चा क्रियान्वयन (Genuine Federalism)

1990 से पूर्व भारत का संघवाद 'केंद्र-उन्मुख' (Centralized) था। 1989 से 2014 के बीच गठबंधन सरकारों के दौर में क्षेत्रीय दलों ने केंद्र सरकार की मनमानी पर रोक लगाई। अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) के दुरुपयोग में भारी कमी आई, क्योंकि क्षेत्रीय दल केंद्र को गिराने या बनाने की ताकत रखते थे।

5.2 नीति-निर्माण में सामाजिक न्याय का समावेश

क्षेत्रीय दलों के दबाव के कारण ही राष्ट्रीय नीतियों में निम्नलिखित क्रांतिकारी बदलाव आए:

1. **उच्च शिक्षण संस्थानों में OBC आरक्षण:** 2006 में केंद्रीय शैक्षणिक संस्थान (प्रवेश में आरक्षण) अधिनियम पारित हुआ, जिससे IIT और IIM जैसे संस्थानों में 27% OBC आरक्षण लागू हुआ।
2. **स्थानीय स्वशासन (73वां व 74वां संविधान संशोधन):** पंचायतों और नगर निकायों में SC, ST और महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित की गईं।
3. **कल्याणकारी योजनाओं का राष्ट्रीयकरण:** दक्षिण भारत के क्षेत्रीय दलों (जैसे DMK की मध्याह्न भोजन योजना) के सफल प्रयोगों को बाद में पूरे देश में राष्ट्रीय नीतियों (जैसे मनरेगा, खाद्य सुरक्षा अधिनियम) के रूप में लागू किया गया।

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 4, July-August 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i04.1468

5.3 भारतीय संसद का सामाजिक पुनर्गठन

समाजशास्त्री जाफ़्रेलोट और राजनीतिक विश्लेषक नीरजा गोपाल जयल के अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि 1952 की प्रथम लोकसभा की तुलना में 10वीं से 15वीं लोकसभा के बीच संसद में कृषक, पिछड़े और ग्रामीण पृष्ठभूमि के सांसदों का प्रतिशत 20% से बढ़कर 40% से अधिक हो गया। यह बदलाव क्षेत्रीय दलों के टिकट वितरण में वंचित वर्गों को तरजीह देने के कारण संभव हुआ।

समय अवधि	उच्च जातीय सांसदों का प्रतिशत (%)	OBC एवं SC/ST सांसदों का प्रतिशत (%)
1952 – 1962	64%	18%
1971 – 1980	52%	27%
1991 – 2009	35%	48%
2014 – 2024	38%	45%

(स्रोत: विभिन्न लोकसभा चुनावों के सामाजिक-आर्थिक आंकड़ों का संकलित विश्लेषण)

6. चुनौतियां, सीमाएं एवं आलोचनात्मक विश्लेषण

हालांकि क्षेत्रीय दलों ने वंचित वर्गों के सशक्तीकरण में ऐतिहासिक योगदान दिया है, परंतु समय के साथ इन दलों में कई गंभीर विकृतियां और सीमाएं भी उभर कर सामने आई हैं:

6.1 परिवारवाद एवं आंतरिक लोकतंत्र का अभाव

अधिकांश क्षेत्रीय दल सामाजिक न्याय के नाम पर सत्ता में आए, परंतु कालांतर में वे 'पारिवारिक निजी कंपनियों' में तब्दील हो गए। उदाहरण के लिए:

- समाजवादी पार्टी में मुलायम सिंह यादव के परिवार का वर्चस्व।
- RJD में लालू प्रसाद यादव के परिवार का नियंत्रण।
- DMK में करुणानिधि परिवार का एकाधिकार।

इस परिवारवाद के कारण वंचित वर्गों के सामान्य कार्यकर्ताओं के लिए शीर्ष नेतृत्व तक पहुँचने के रास्ते बंद हो गए।

6.2 जातियों का वर्चस्ववादी पदानुक्रम (Dominant Caste Hegemony)

क्षेत्रीय दलों ने सभी पिछड़े वर्गों का समान सशक्तीकरण करने के बजाय केवल अपनी 'अग्रणी पिछड़े जातियों' (Dominant Castes) को लाभ पहुँचाया। उत्तर प्रदेश और बिहार में यादव समुदाय, आंध्र प्रदेश में रेड्डी व कम्मा, और कर्नाटक में वोक्कलिगा व लिंगायत समुदाय ने अधिकांश राजनीतिक व आर्थिक लाभ हड़प लिए। इसके परिणामस्वरूप अति-पछड़े वर्ग (MBCs) और महादलित मुख्य धारा से अलग-थलग पड़ गए।

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 4, July-August 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i04.1468

6.3 पहचान की राजनीति का संकीर्ण रूप

क्षेत्रीय दलों ने अक्सर जातिगत और धार्मिक अस्मिताओं का उपयोग 'ध्रुवीकरण' और 'वोट बैंक' की राजनीति के लिए किया। इससे विकास, रोजगार, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे व्यापक नीतिगत मुद्दे (Governance Issues) पीछे छूट गए।

6.4 भ्रष्टाचार एवं संस्थागत क्षरण

सामाजिक न्याय के नारों की आड़ में व्यापक भ्रष्टाचार के आरोप भी क्षेत्रीय दलों के शीर्ष नेताओं पर लगे (जैसे चारा घोटाला, 2G स्पेक्ट्रम मामला)। इससे वंचित वर्गों के सशक्तीकरण की नैतिक साख को गहरा धक्का लगा।

7. निष्कर्ष एवं भावी दिशा (Conclusion & Recommendations)

भारतीय लोकतंत्र के विकास पथ पर क्षेत्रीय दलों के योगदान का मूल्यांकन निष्पक्ष रूप से किया जाना चाहिए। क्षेत्रीय दलों ने भारत की राष्ट्रीय राजनीति का 'लोकतंत्रीकरण' (Democratization) किया है। उन्होंने यह साबित कर दिया कि दिल्ली के गलियारों में सत्ता का केंद्र केवल कुछ चुनिंदा अभिजात वर्गों के पास नहीं रह सकता। वंचित, शोषित, दलित और पिछड़ों को मतदाता से 'सत्ता का भागीदार' बनाने का श्रेय निःसंदेह क्षेत्रीय दलों को जाता है।
राष्ट्रीय राजनीति में इन वर्गों की भागीदारी ने भारतीय संघवाद को अधिक मजबूत, विविधतापूर्ण और जीवंत बनाया है। हालांकि, वर्तमान में जब राष्ट्रीय दल पुनः एक-दल वर्चस्ववादी मॉडल की ओर लौट रहे हैं, क्षेत्रीय दलों के सामने अपने अस्तित्व और प्रासंगिकता को बचाए रखने की गंभीर चुनौती है।

भावी सुझाव (Recommendations):

1. **आंतरिक लोकतंत्र की बहाली:** क्षेत्रीय दलों को अपने संगठनों के भीतर चुनाव कराने चाहिए और परिवारवाद से ऊपर उठकर आम कार्यकर्ताओं को नेतृत्व सौंपना चाहिए।
2. **अति-पिछड़ों एवं महादलितों का समावेश:** क्षेत्रीय दलों को केवल अपनी मुख्य जाति तक सीमित न रहकर अति-पिछड़ों, घुमंतू जातियों और महिलाओं को आनुपातिक प्रतिनिधित्व देना होगा।
3. **अस्मिता से आगे विकास की ओर:** पहचान की राजनीति के साथ-साथ आर्थिक सशक्तीकरण, कौशल विकास, और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा जैसे बुनियादी मुद्दों को अपने मुख्य एजेंडे में शामिल करना होगा।
4. **राष्ट्रीय मुद्दों पर वैचारिक स्पष्टता:** केवल स्थानीय या जातिगत समीकरणों के भरोसे रहने के बजाय राष्ट्रीय और वैश्विक आर्थिक-सामाजिक मुद्दों पर सुस्पष्ट और प्रगतिशील दृष्टिकोण विकसित करना आवश्यक है।

संक्षेप में, क्षेत्रीय दलों के माध्यम से वंचित वर्गों की राष्ट्रीय राजनीति में भागीदारी भारतीय लोकतंत्र की एक महान उपलब्धि है। इस यात्रा को और अधिक अर्थपूर्ण बनाने के लिए इन दलों को अपनी आंतरिक कमियों को दूर कर 'सामाजिक न्याय' के वास्तविक सिद्धांतों की ओर पुनः लौटना होगा।

8. संदर्भ सूची (References)

1. **अंबेडकर, बी. आर.** (1936). *जाति का विनाश (Annihilation of Caste)*. सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. **कोठारी, रजनी.** (1970). *पॉलिटिक्स इन इंडिया.* ओरिएंट लोंगमेन, नई दिल्ली।

Advanced International Journal of Multidisciplinary Research
E-ISSN: 2584-0487
editor@aijmr.com
Volume 4, Issue 4, July-August 2026
CrossRef DOI: 10.62127/aijmr.2026.v04i04.1468

3. **जाफ़्रेलोट, क्रिस्टोफ़.** (2003). *इन्डियाज़ साइलेंट रेवोल्यूशन: द राइज़ ऑफ़ द लोअर कास्ट्स इन नॉर्थ इंडिया.* सी. हर्स्ट एंड कंपनी, लन्दन।
4. **यादव, योगेंद्र.** (1996). *रीआर्गेनाइजिंग द इंडियन पॉलिटिकल माइंड: द सेकेंड डेमोक्रेटिक अपसर्ज.* इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, खंड 31, संख्या 2/3, पृष्ठ 95-104।
5. **हसन, जोया.** (2000). *पॉलिटिक्स एंड द स्टेट इन इंडिया.* सागर पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
6. **पाय (Pai), सुधा.** (2002). *दलित एसरशन एंड द अनफिनिश्ड रेवोल्यूशन: द बहुजन समाज पार्टी इन उत्तर प्रदेश.* सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
7. **रॉय, रामआश्रय एवं सिंह, वी. बी.** (1987). *बिटवीन टू वोट्स: ए स्टडी ऑफ़ पॉलिटिकल पार्टिसिपेशन.* सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
8. **वर्मा, ए. के.** (2005). *बैकवर्ड कास्ट पॉलिटिक्स इन उत्तर प्रदेश.* इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, खंड 40, संख्या 36, पृष्ठ 3889-3892।
9. **शास्त्री, संदीप; सूरी, के. सी. एवं यादव, योगेंद्र.** (2009). *इलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन इंडियन स्टेट्स.* सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
10. **जयल, नीरजा गोपाल एवं मेहता, प्रताप भानु.** (2010). *द ऑक्सफोर्ड कम्पेनियन टू पॉलिटिक्स इन इंडिया.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
11. **रुडोल्फ, लॉयड आई. एवं रुडोल्फ, सुज़ैन एच.** (1987). *इन परस्यूट ऑफ़ लक्ष्मी: द पॉलिटिकल इकॉनमी ऑफ़ द इंडियन स्टेट.* यूनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो प्रेस, शिकागो।
12. **चिब्बर, प्रदीप्त.** (1999). *डेमोक्रेसी विदाउट एसोसिएशन्स: ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ़ द पार्टी सिस्टम इन इंडिया.* यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिचिगन प्रेस।
13. **सिंह, एम. पी. एवं रॉय, हिमांशु.** (2018). *भारतीय राजनीतिक प्रणाली: संरचना एवं प्रक्रिया.* टाटा मैक्ग्रा हिल, नई दिल्ली।
14. **मिश्रा, मधुसूदन.** (2012). *भारत में क्षेत्रीय दल और गठबंधन राजनीति.* अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
15. **पांडेय, गोविन्द प्रसाद.** (2015). *दलित चेतना और सामाजिक न्याय.* अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
16. **लोहिया, राममनोहर.** (1964). *जाति प्रथा.* समता विद्यालय प्रकाशन, हैदराबाद।
17. **कांस्यप, सुभाष सी.** (2008). *भारतीय राजनीति और संसद: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन.* नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
18. **सिन्हा, असीम.** (2005). *द रीजनल रूट्स ऑफ़ फेडरल न्यू इंडिया.* यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिचिगन प्रेस।
19. **कुमार, संजय.** (2014). *पोस्ट-मण्डल पॉलिटिक्स इन बिहार: चेंजिंग ट्रेंड्स एंड इलेक्टोरल डायनेमिक्स.* सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
20. **थॉमस, पी. ए.** (2011). *रीजनल पार्टीज एंड द फ्यूचर ऑफ़ इंडियन फेडरलिज्म.* इंडियन जर्नल ऑफ़ पॉलिटिकल साइंस, खंड 72, संख्या 4, पृष्ठ 1011-1022।
21. **आंबेडकर, बी. आर.** (1945). *व्हाट कांग्रेस एंड गांधी हैव डन टू द अनटचेबल्स.* थैकर एंड कंपनी, बॉम्बे।
22. **मैकफर्सन, सी. बी.** (1973). *द रियल वर्ल्ड ऑफ़ डेमोक्रेसी.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क।